

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 10 अध्याय 81 — सुदामा पर श्रीकृष्ण की कृपा

5 October 2026



फटे कपड़े में बँधी मुट्ठी-भर चिउड़ा, एक प्रभु जो उसे त्रिलोकी की सम्पत्ति मानकर खाते हैं, और एक निर्धन मित्र जो बिना एक कौड़ी के घर भेजा जाता है — केवल यह पाने के लिए कि कृपा उससे पहले ही उसके द्वार पर पहुँच चुकी थी।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में पुनः स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पवित्र कथाओं और शिक्षाओं की हमारी भक्तिमयी यात्रा। दशम स्कन्ध के इस इक्यासीवें अध्याय में शुकदेवजी श्रीकृष्ण के निर्धन ब्राह्मण मित्र सुदामा की प्रिय कथा को पूर्ण करते हैं। प्रभु अपने अतिथि की फटी चादर के भीतर छिपी चिउड़े की पोटली स्वयं निकालकर उसे आनन्द से खाते हैं; रुक्मिणीजी को स्वयं उनका हाथ थामना पड़ता है। सुदामा खाली हाथ किन्तु भरे हृदय से लौटते हैं, और अपनी कुटिया को महल बना पाते हैं — फिर भी उनका धन नहीं, कृष्ण के प्रति उनका प्रेम ही उनकी निधि बना रहता है।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण

- स्कन्ध: 10 (दशम स्कन्ध, उत्तरार्ध)
- अध्याय: 81 (एकाशीतितम अध्याय)
- अध्याय शीर्षक: भगवान् का सुदामा ब्राह्मण पर अनुग्रह
- मुख्य वक्ता: श्री शुकदेव गोस्वामी (राजा परीक्षित को सुनाते हुए)
- मुख्य श्रोता: राजा परीक्षित
- मुख्य स्थल: द्वारका में श्रीकृष्ण का महल, और फिर सुदामा का घर
- केंद्रीय विषय: सुदामा के चिउड़े का श्रीकृष्ण द्वारा स्वीकार; बिना धन माँगे सुदामा की विदाई; उनके घर का रूपान्तरण; उनकी अपरिवर्तित भक्ति
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 10, अध्याय 81, श्लोक 1-41
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, भाग 2)

पूर्व अध्याय का संदर्भ

अस्सीवें अध्याय में निर्धन ब्राह्मण सुदामा अपनी पतिव्रता पत्नी के आग्रह पर बाल-सखा के लिए मुट्ठी-भर चिउड़े की छोटी पोटली लेकर द्वारका गए। श्रीकृष्ण ने उन्हें अपार सम्मान से अपनाया, उनके चरण धोए, अपनी शय्या पर बिठाया, और दोनों मित्रों ने गुरु सान्दीपनि के घर के दिन याद किए।

“मेरे लिए क्या लाए हो?”

शुकदेवजी ने कथा आगे बढ़ाई। समस्त प्राणियों के मन को जानने वाले, ब्राह्मण-भक्त और सन्तों के आश्रय श्रीकृष्ण अपने प्रिय मित्र से स्नेहपूर्वक बातें कर रहे थे। अब प्रेम-भरी दृष्टि से उन्हें देखते और हँसते हुए उन्होंने एक परिहास-भरा प्रश्न किया।

श्रीभगवानुवाच

किमुपायनमानीतं ब्रह्मन् मे भवता गृहात् ।

अण्वप्युपाहृतं भक्तैः प्रेम्णा भूर्येव मे भवेत् ।

भूर्यप्यभक्तोपहृतं न मे तोषाय कल्पते ॥ ३ ॥

kim upāyanam ānītaṁ brahman me bhavatā gṛhāt aṇv apy upāhṛtaṁ bhaktaiḥ premṇā bhury eva me bhavet bhūry apy abhaktopahṛtaṁ na me toṣāya kalpate

अर्थ: श्रीभगवान् ने कहा: हे ब्राह्मण, घर से मेरे लिए क्या भेंट लाए हो? भक्त प्रेम से जो अणु-मात्र भी अर्पित करते हैं, वह मेरे लिए विपुल हो जाता है; किन्तु अभक्त का विपुल उपहार भी मुझे सन्तोष नहीं दे पाता। (स्कन्ध 10, अध्याय 81, श्लोक 3)

फिर उन्होंने वे वचन कहे जिन्हें भक्त तब से हृदय में सँजोए हैं।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।

तदहं भक्त्युपहृतमश्रामि प्रयतात्मनः ॥ ४ ॥

patraṁ puṣpaṁ phalaṁ toyam yo me bhaktyā prayacchati tad ahaṁ bhakty-upahṛtam aśnāmi prayatātmanaḥ

अर्थ: जो मुझे भक्ति से पत्र, पुष्प, फल या जल अर्पित करता है, शुद्ध हृदय वाले उस भक्त का वह प्रेमोपहार मैं स्वीकार कर खा लेता हूँ।
(स्कन्ध 10, अध्याय 81, श्लोक 4)



प्रेम से मुस्कराते हुए श्रीकृष्ण मित्र से पूछते हैं कि वे क्या उपहार लाए हैं, और कहते हैं कि भक्ति से अर्पित पत्र या थोड़ा-सा जल भी उन्हें प्रिय है; लज्जित ब्राह्मण बस सिर झुका लेते हैं (श्लोक 3-5)।

इतना प्रोत्साहन पाकर भी ब्राह्मण लक्ष्मीपति के सामने अपनी मुट्ठी-भर चिउड़ा निकालने का साहस न कर सके। लज्जा से उन्होंने बस सिर झुका लिया।

प्रभु छिपी हुई भेंट स्वयं ले लेते हैं

किन्तु सबके हृदय को देखने वाले श्रीकृष्ण समझ गए कि मित्र क्यों आया है। उन्होंने मन में सोचा: इस ब्राह्मण ने मुझसे कभी धन नहीं चाहा। यह केवल अपनी पतिव्रता पत्नी के आग्रह पर आया है, जिसे प्रसन्न करना यह चाहता है। मैं इसे वह सम्पत्ति दूँगा जो देवताओं को भी दुर्लभ है।

ऐसा निश्चय कर प्रभु ने स्वयं ब्राह्मण की चादर के भीतर हाथ डाला, चिथड़े में बँधा चिउड़ा खींच निकाला और हर्ष से बोले: “यह क्या है, मित्र? तुम तो मेरे लिए वह लाए हो जो मुझे सबसे प्रिय है! ये दाने केवल मुझे ही नहीं, समस्त विश्व को तृप्त कर देंगे।” यह कहकर उन्होंने एक मुट्ठी खा ली और दूसरी मुख की ओर उठा ही रहे थे कि रुक्मिणीजी ने — जो स्वयं लक्ष्मी हैं और सर्वथा उन्हीं में अनुरक्त — उनका हाथ थाम लिया।

इति मुष्टिं सकृज्जग्ध्वा द्वितीयां जग्धुमाददे ।
तावच्छीर्जगृहे हस्तं तत्परा परमेष्ठिनः ॥ १० ॥

*iti muṣṭim sakṛj jagdhvā dvitīyāṁ jagdhum ādade tāvac chrīr jagṛhe hastam tat-parā
parameṣṭhinaḥ*

अर्थ: इस प्रकार एक मुट्ठी खाकर जब वे दूसरी खाने को उठाने लगे, तभी उनमें परायण श्री (लक्ष्मीजी) ने परमेश्वर का हाथ पकड़ लिया। (स्कन्ध 10, अध्याय 81, श्लोक 10)

“हे विश्वात्मन्, बस इतना ही पर्याप्त है,” उन्होंने कहा। “एक मुट्ठी ही आपको प्रसन्न करने और मनुष्य को इस लोक तथा परलोक में सब प्रकार की समृद्धि देने के लिए काफी है।” उनके शब्दों के भीतर एक कोमल विनती थी: दूसरी मुट्ठी के साथ उन्हें स्वयं भी उस भेंट के पीछे चला जाना पड़ता।

खाली हाथ, भरा हृदय — सुदामा की विदाई

ब्राह्मण ने वह रात श्रीकृष्ण के महल में बिताई, तृप्त होकर भोजन किया और स्वयं को मानो प्रभु के धाम में ही अनुभव किया। अगले प्रातः वे घर को चले। समस्त विश्व के प्राण, अपने ही आनन्द में पूर्ण श्रीकृष्ण कुछ दूर उनके साथ चले, मीठे वचनों से उन्हें प्रसन्न किया और विदा में उन्हें प्रणाम किया।



अगले प्रातः श्रीकृष्ण मित्र के साथ कुछ दूर चलते हैं, मीठे वचनों से उन्हें प्रसन्न करते और प्रणाम करते हैं; सुदामा बिना धन के, किन्तु प्रभु-दर्शन के आनन्द से भरकर विदा लेते हैं (श्लोक 13-14)।

सुदामा को कृष्ण से कोई धन नहीं मिला था, और उन्होंने माँगा भी नहीं था। अपने हृदय की संकीर्णता पर थोड़े लज्जित, फिर भी प्रभु के दर्शन के आनन्द से भरे वे घर की ओर चले। राह में उनके विचार विस्मय में उमड़ पड़े। प्रभु कितने ब्राह्मण-भक्त हैं! जिस वक्षस्थल पर लक्ष्मी निवास करती हैं, उससे मुझे दरिद्र को लगा लिया। कहाँ मैं पापी निर्धन, और कहाँ श्रीनिकेतन कृष्ण? फिर भी केवल ब्राह्मण-कुल में जन्म के कारण उन्होंने मुझे गले लगाया, भाई की तरह अपनी प्रिया रुक्मिणी की शय्या पर बिठाया, और थका देखकर स्वयं महारानी ने मुझ पर चँवर डुलाया। देवों के देव ने मेरे पैर दबाए और देवता की भाँति मेरी सेवा की। स्वर्ग, मोक्ष, पृथ्वी और पाताल की सारी सम्पत्ति, सारी सिद्धियाँ — सब उनके चरणों की उपासना से मिलती हैं। फिर भी उन्होंने मुझे थोड़ा-सा धन भी न दिया — अवश्य इसलिए कि धन पाकर मुझ-जैसा निर्धन मदान्ध होकर उन्हें भूल जाता।

अधनोऽयं धनं प्राप्य माद्यन्नृच्यैर्न मां स्मरेत् ।

इति कारुणिको नूनं धनं मेऽभूरि नाददात् ॥ २० ॥

adhano 'yam dhanam prāpya mādyann uccair na mām smaret iti kārūṇiko nūnam dhanam me 'bhūri nādadāt

अर्थ: “यह निर्धन धन पाकर उन्मत्त हो जाएगा और फिर मेरा स्मरण नहीं करेगा” — ऐसा विचार कर करुणामय प्रभु ने निश्चय ही मुझे थोड़ा-सा धन भी नहीं दिया। (स्कन्ध 10, अध्याय 81, श्लोक 20)

सुदामा प्रभु के मौन को उपेक्षा नहीं, कृपा समझते हैं — यही उनकी भक्ति का मर्म है।

कुटिया जो महल बन गई

इसी चिन्तन में डूबे ब्राह्मण अपने घर के पास पहुँचे — और उसे पहचान न सके। चारों ओर सूर्य, अग्नि और चन्द्रमा-से दमकते सात-सात मंज़िल के भवन खड़े थे। उद्यानों और उपवनों में पक्षियों का कलख गूँज रहा था; सरोवर खिले हुए कुमुद और कमलों से ढके थे। सुसज्जित पुरुष और सुन्दर स्त्रियाँ इधर-उधर आ-जा रही थीं। किंकर्तव्यविमूढ़ होकर वे सोचने लगे: यह क्या है? यह किसका स्थान है? यदि यही वह जगह है जहाँ मैं रहता था, तो किस चमत्कार ने इसे इतने महलों में बदल दिया?

वे यों ही सोच रहे थे कि देवताओं-से तेजस्वी स्त्री-पुरुष गीत और वाद्यों के साथ उस भाग्यशाली ब्राह्मण का स्वागत करने निकल आए। पति के लौटने का समाचार सुनकर उनकी पत्नी आनन्द की अधीरता में शीघ्रता से भवन से बाहर आई, मानो साक्षात् लक्ष्मीजी अपने धाम से निकल रही हों। पति को देखते ही उनकी आँखें प्रेम के आँसुओं से भर आई; लज्जा से नेत्र मूँदकर उन्होंने प्रणाम किया और मन-ही-मन उनका आलिंगन किया।



जहाँ कभी कुटिया थी, वहाँ सुदामा सूर्य-चन्द्र-से दमकते भवन, वाद्यों के साथ स्वागत करते देवतुल्य परिचारक, और अपने धाम से निकलती लक्ष्मी-सी पत्नी को पाते हैं (श्लोक 21-27)।

स्वर्ण-हार पहनी दासियों के बीच किसी देवांगना-सी दमकती पत्नी को देखकर ब्राह्मण चकित रह गए। उनके पीछे-पीछे वे अपने ही घर में प्रविष्ट हुए, जो अब सैकड़ों मणि-स्तम्भों पर टिका इन्द्र-भवन-सा शोभित था: स्वर्णजटित हाथीदाँत के पलंग, दूध के फेन-से श्वेत और कोमल बिछौने, सोने के दण्ड वाले चँवर, गद्देदार स्वर्ण-आसन, मोतियों की लड़ियों से झूलते चँदोवे, और पन्ने-जड़ी स्फटिक की दीवारें, जहाँ रत्नों की बनी प्रतिमाएँ हाथों में दीप्त मणियाँ थामे कक्षों को आलोकित कर रही थीं।

सुदामा का अपरिवर्तित हृदय

बिना किसी प्रत्यक्ष कारण के आई इतनी सम्पत्ति देखकर भी ब्राह्मण उसमें खो नहीं गए। शान्त मन से उन्होंने विचार किया। मैं तो जन्म से ही दरिद्र और अभागा हूँ, उन्होंने सोचा; यदुकुल-शिरोमणि, सर्वेश्वर्यमय कृष्ण की कृपा-दृष्टि के सिवा यह समृद्धि मुझे और कहाँ से मिल सकती थी? वे अपने पास आए भक्त को विपुल दान देते हैं, फिर भी उसे कुछ नहीं गिनते और उसकी चर्चा तक नहीं करते — मेघ की भाँति मेरे सखा, दाशार्ह-श्रेष्ठ, चुपचाप देते हैं। अपने दिए को वे तुच्छ मानते हैं, पर भक्त की छोटी-सी भेंट को बहुत बड़ा; तभी तो महात्मा प्रभु ने मेरे चिउड़े की एक मुट्ठी इतने प्रेम से स्वीकार की।

और तब, अपनी समस्त नई सम्पत्ति के बीच, सुदामा ने वही एक वस्तु माँगी जो वे सदा चाहते आए थे।

तस्यैव मे सौहृदसख्यमैत्री
दास्यं पुनर्जन्मनि जन्मनि स्यात् ।
महानुभावेन गुणालयेन
विषज्जतस्तत्पुरुषप्रसङ्गः ॥ ३६ ॥

*tasyaiva me sauhṛda-sakhyā-maitrī- dāsyam punar janmani janmani syāt mahānubhāvena
guṇālayena viśajjatas tat-puruṣa-prasaṅgaḥ*

अर्थ: जन्म-जन्म में मुझे उन्हीं का सौहार्द, सख्य, मैत्री और दास्य प्राप्त हो; और गुणों के धाम उन महानुभाव में अनुरक्त रहते हुए मुझे उनके भक्तों का संग मिले। (स्कन्ध 10, अध्याय 81, श्लोक 36)

वे यह भी समझ गए कि प्रभु प्रायः “नहीं” क्यों कहते हैं। दूरदर्शी, अजन्मा कृष्ण जानते हैं कि धन और ऐश्वर्य उनके मद में डूबे लोगों का पतन कैसे कराते हैं।

भक्ताय चित्रा भगवान् हि सम्पदो
राज्यं विभूतीर्न समर्थयत्यजः ।
अदीर्घबोधाय विचक्षणः स्वयं
पश्यन् निपातं धनिनां मदोद्भवम् ॥ ३७ ॥

*bhaktāya citrā bhagavān hi sampado rājyaṁ vibhūtīr na samarthayaty ajaḥ adīrgha-bodhāya
vicakṣaṇaḥ svayaṁ paśyan nipātaṁ dhanināṁ madodbhavam*

अर्थ: विचक्षण अजन्मा भगवान्, धन के मद से धनियों का पतन स्वयं देखते हुए, अल्पबुद्धि भक्त को चकाचौंध भरी सम्पत्तियाँ, राज्य और विभूतियाँ प्रदान नहीं करते। (स्कन्ध 10, अध्याय 81, श्लोक 37)



मणि-स्तम्भों वाले कक्षों के बीच सुदामा जन्म-जन्म में केवल कृष्ण की मित्रता और सेवा माँगते हैं, और अपने वैभव को अनासक्त भाव से भोगते हुए उनकी भक्ति बढ़ती जाती है (श्लोक 36-38)।

इस निश्चय में स्थिर होकर जनार्दन के परम भक्त उस ब्राह्मण ने पत्नी सहित प्राप्त भोगों को अनासक्त भाव से, बिना लोलुपता के, उन्हें कभी भी छोड़ देने की तत्परता से थोड़ा-सा भोगा — और कृष्ण में उनकी भक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती गई।

शुकदेवजी के समापन-वचन

फिर शुकदेवजी ने परीक्षित को इस पूरे प्रसंग की शिक्षा दी। देवों के देव, यज्ञपति, स्वयं श्रीहरि ब्राह्मणों को अपना स्वामी और आराध्य देवता मानते हैं; अतः उनसे बड़ा कोई प्राणी नहीं। और भगवान् के सखा उस ब्राह्मण ने यह देखकर कि अजेय प्रभु अपने ही सेवकों से पराजित हो जाते हैं, उनके ध्यान में स्वयं को लीन कर दिया। उस ध्यान के वेग से उनकी आत्मा की ग्रन्थियाँ कट गईं, और शीघ्र ही उन्होंने सन्तों की गति, भगवान् का धाम प्राप्त किया।

एतद् ब्रह्मण्यदेवस्य श्रुत्वा ब्रह्मण्यतां नरः ।

लब्धभावो भगवति कर्मबन्धाद् विमुच्यते ॥ ४१ ॥

etad brahmaṇya-devasya śrutvā brahmaṇyatām naraḥ labdha-bhāvo bhagavati karma-bandhād vimucyate

अर्थ: ब्राह्मणों को अपना देवता मानने वाले भगवान् की इस ब्राह्मण-प्रियता को जो मनुष्य सुनता है, उसे भगवान् में भाव प्राप्त होता है और वह कर्म-बन्धन से मुक्त हो जाता है। (स्कन्ध 10, अध्याय 81, श्लोक 41)

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. प्रभु मात्रा नहीं, प्रेम स्वीकार करते हैं। प्रेम से लाई गई छोटी-सी भेंट बिना प्रेम के पहाड़-भर उपहार से भारी है; भक्ति से रखा पत्र, पुष्प, फल या जल वे खा लेते हैं (श्लोक 3-4)। उनके हृदय का द्वार केवल भक्ति है।
2. प्रभु का रोक लेना भी कृपा है। सुदामा की समझ (श्लोक 20) की पुष्टि आगे होती है: सर्वदर्शी प्रभु उसे चकाचौंध भरा धन नहीं सौंपते जिसे अभिमान नष्ट कर दे (श्लोक 37)। जब सांसारिक लाभ की प्रार्थना अनुत्तरित रहे, तब भक्त अपनी इच्छा से अधिक बुद्धिमान करुणा पर भरोसा कर सकता है।
3. वे मेघ की भाँति देते हैं — मौन और अपार। कृष्ण ने बिना एक शब्द कहे वैभव उँडेल दिया और उस प्रचुरता को भी कुछ न गिना। उनकी उदारता घोषित नहीं होती; वह खोज ली जाती है।
4. सच्चा धन उनकी मित्रता है। रत्नों के महल में खड़े सुदामा हर जन्म में केवल प्रभु का स्नेह, सेवा और उनके भक्तों का संग माँगते हैं (श्लोक 36)। जिसने कृष्ण का प्रेम चख लिया, उसके लिए चाहने को इससे ऊँचा कुछ नहीं बचता।
5. प्रभु अपने सेवकों से पराजित होते हैं। अजेय प्रभु अपने भक्त की इच्छा के वश हो जाते हैं, और वह भक्त उनका धाम पाता है। ऐसे प्रेम को सुनना मात्र ही भक्ति जगाता है और कर्म के बन्धन ढीले कर देता है (श्लोक 41)।

एक भाक्तेमय चिन्तन

इस कथा में हृदय को सबसे अधिक जो छूता है वह अन्त का महल नहीं, उससे पहले की घर-वापसी की राह है। सुदामा द्वारका से खाली हाथ लौटते हैं और प्रसन्न हैं, क्योंकि उन्होंने अपने सखा को देख लिया है। वे प्रभु को उनके “नहीं” के लिए भी धन्यवाद दे डालते हैं। खालीपन को कृपा पढ़ सकने वाला हृदय पहले से ही भरा हुआ होता है; और जिसे कुछ न चाहिए था, उसी हृदय में कृष्ण ने सब कुछ उँडेल दिया।

यहीं प्रभु के हाथ पर रखे रुक्मिणीजी के हाथ की शिक्षा भी है। भेंट छोटी थी; उसके भीतर का प्रेम इतना विशाल था कि उसने स्वयं लक्ष्मी को गतिमान कर दिया। एक सच्चा शब्द, स्मरण का एक क्षण, उनकी प्रसन्नता के लिए किया छोटा-सा कर्म — यही हमारा चिउड़ा है, और वे उसे लोकों की सम्पत्ति मानकर ग्रहण करते हैं।

हम सुदामा से उनकी श्रद्धा के दोनों पक्ष सीखें: प्रभु जब कुछ न दें तब सन्तुष्ट रहना, और जब सब कुछ दें तब भी वैसे ही बने रहना। उनके चारों ओर सम्पत्ति आई-गई; केवल उनकी भक्ति बढ़ती रही। यही वह धन है जो प्रभु अपने मित्र के लिए चाहते थे, और हमारे लिए भी चाहते हैं।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज प्रभु को पूरे हृदय से कुछ छोटा-सा अर्पित करें — तुलसी-दल, एक पुष्प, एक फल, एक लोटा जल, या कुछ मिनट का एकाग्र स्मरण — और बदले में कुछ न माँगें। यदि आपकी कोई इच्छा अनुत्तरित रह गई हो, तो सुदामा की तरह उन्हें धन्यवाद दें, इस विश्वास के साथ कि वे आपसे दूर तक देखते हैं। आरम्भ में धीरे-धीरे जपें: ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

उपसंहार

दशम स्कन्ध का यह इक्यासीवाँ अध्याय सुदामा की कथा को उसके कोमल अन्त तक ले आता है। ब्राह्मण खाली हाथ किन्तु धन्य होकर घर लौटते हैं और वहाँ अपनी कुटिया के स्थान पर रत्नजटित महल पाते हैं। इस सबके बीच एक ही सत्य चमकता है: प्रभु भेंट का आकार नहीं, उसमें भरा प्रेम तौलते हैं, और धन देना या रोक लेना केवल भक्त के हृदय के हित के लिए तय करते हैं। अपार वैभव पाकर भी सुदामा जन्म-जन्म में केवल कृष्ण की मित्रता माँगते हैं — और उन्हें पा लेते हैं। हम भी अपना थोड़ा-सा उसी प्रेम से अर्पित करें, और अपना बहुत-सा उसी अनासक्ति से थामें।

श्रीमद्भागवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जगाए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

संदर्भ एवं आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, भाग 2), दशम स्कन्ध (उत्तरार्ध), अध्याय 81।
- श्रृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज़्डम • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी एवं लिप्यन्तरण सहित दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश रूप में प्रस्तुत हैं। यह किसी एक प्रकाशक के सतत अनुवाद या टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक के संबंध या समर्थन का दावा नहीं किया गया है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-10-chapter-81-the-lord-blesses-sudama-brahmana-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

